चुनावी बॉण्ड की राजनीति

संदर्भ

कुछ समय पूर्व वित्त राज्यमंत्री द्वारा राज्यसभा में यह बताया गया था कि चुनावी बॉण्ड के ज़रिये अब तक राजनीतिक दलों को लगभग 1045 करोड़ रुपए की राशि राजनीतिक चंदे के रूप में प्राप्त हुई है। वित्त राज्यमंत्री ने यह भी बताया कि नौ माह की अवधि में 6 चरणों में 1056 करोड़ रुपए के चुनावी बॉण्ड बैंकों से खरीदे गए थे जिनमें से 1045 करोड़ रुपए की राशि राजनीतिक दलों तक पहुँची।

- दरअसल, सरकार ने राजनीतिक प्रायोजन की प्रचलित संस्कृति में पारदर्शिता लाने के मकसद से चुनावी बॉण्ड योजना की शुरुआत की थी। लेकिन सरकार की इस पहल पर कई सवालिया निशान लगने से इसकी सकारात्मकता और पारदर्शिता फिर सवालों के घेरे में है।
- मुख्य चुनाव आयुक्त के पद से रिटायर हुए **ओ.पी. रावत** ने चुनावी बॉण्ड पर चिंता जताते हुए कहा है कि इससे न केवल पारदर्शिता खत्म होगी बल्कि, इलेक्टोरल बॉण्ड फाइनेंस सिस्टम और कमज़ोर होगा। उनका मानना है कि इसके ज़रिये विदेशी पैसा भारत में आ सकता है और यहाँ तक कि एक दिवालिया कंपनी भी अब राजनीतिक दलों को चंदा दे सकती है।
- पिछले दिनों **चुनाव आयोग** ने भी चंदा देने वालों के नाम को गोपनीय रखने के संशोधन पर आपत्ति जताई थी। जाहिर है, आयोग को इस बात का डर है कि नाम गुप्त रखने से प्रक्रिया में पारदर्शिता नहीं आएगी जिससे लोकतंत्र पर इसका असर पड़ सकता है।

ऐसे में सवाल है कि क्या चुनावी बॉण्ड में दानकर्त्ताओं के नाम की गोपनीयता वाकई एक चिंता का विषय है? क्या नाम की गोपनीयता चुनावी बॉण्ड के चुनावी सुधार के मकसद के विपरीत है? सवाल है कि जहाँ एक तरफ चुनावी बॉण्ड के चलते कई सुधारात्मक कदम सीधे तौर पर दिखते हैं, वहीं दूसरी तरफ इसे लोकतंत्र के लिये खतरा बताने में कितनी सच्चाई है? आइये इन्हीं पहलुओं पर विचार करते हैं।

चुनावी बॉण्ड की प्रक्रिया

- चुनावी बॉण्ड राजनीतिक दलों को चंदा देने की एक नई व्यवस्था के रूप में हमारे सामने आया है। सरकार का दावा है कि इस नई व्यवस्था से राजनीतिक दलों को गलत तरीके से की जाने वाली फंडिंग के प्रचलन पर रोक लगेगी और उन दलों को ही चंदा दिया जा सकेगा जो इसके योग्य हों। लिहाज़ा, सरकार ने चुनावी बॉण्ड के लिये कई नियम बनाए हैं।
- **पहला नियम** यह है कि **जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 की धारा 29-ए** के तहत रजिस्टर्ड कोई भी राजनीतिक दल जिसने पिछली लोकसभा या विधानसभा चुनाव में कम-से-कम एक फीसद वोट हासिल किया हो, वह इलेक्टोरल बॉण्ड के ज़रिये चंदा ले सकता है। इस प्रावधान के ज़रिये उन चंदों पर रोक लगाने की मंशा है जो कि ऐसे दलों को दिये जाते हैं जो चुनाव लड़ने के नाम पर चंदा तो लेते हैं लेकिन चुनाव में हिस्सा नहीं लेते।
- **दूसरा नियम** यह है कि **इलेक्टोरल बॉण्ड किसी भी वित्त वर्ष की एक तिमाही में केवल 10 दिनों के लिये जारी** किये जाते हैं। लेकिन लोकसभा चुनाव के साल में 30 दिन का अतिरिक्त समय दिया जाएगा।
- **तीसरा नियम** यह है कि **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की कुछ चुनिंदा शाखाओं से जारी होने वाले चुनावी बॉण्ड की वैधता, जारी करने के 15 दिनों** तक रहती है। चंदा देने वाले को इन्हीं 15 दिनों के दौरान अपने मनपसंद राजनीतिक दल के खाते में बॉण्ड को कैश कराना होता है। सिर्फ 15 दिनों का समय देने के पीछे मंशा है कि इन बॉण्ड्स का समानांतर मुद्रा के रूप में दुरुपयोग न किया जा सके।
- **चौथा नियम** यह है कि ये **बॉण्ड्स कम-से-कम एक हज़ार और अधिकतम एक करोड़ रुपए की वैल्यू** के होते हैं। चुनावी बॉण्ड के खरीददार को सभी केवाईसी नियमों को पूरा करना होगा ताकि अवैध खाते से इन बॉण्ड्स की खरीद न हो सके।

ऐसा माना जा रहा है कि चुनावी बॉण्ड राजनीतिक दलों को चंदा देने का एक पारदर्शी टूल है। क्योंकि, दाता इस बॉण्ड को डिज़िटल या चेक के ज़रिये भुगतान करके ही खरीद सकता है। लिहाज़ा, अगर कोई व्यक्ति किसी दल को चंदा देता है तो उसके खाते में चंदे की रकम साफ तौर पर देखी जा सकेगी। यही कारण है कि चंदा लेने वाले और चंदा देने वाले दोनों के ही द्वारा बैंक खाते के इस्तेमाल किये जाने की वज़ह से इस दिशा में पारदर्शिता आने की उम्मीद जताई जा रही है।

चुनावी बॉण्ड किस तरह पूर्व में राजनीतिक चंदा देने के तरीकों से अलग है?

दरअसल, भारतीय राजनीति में चुनावी चंदे का मामला हमेशा ही विवादों में रहा है। कभी इसे राजनीति में कालेधन के उपयोग से जोड़ा जाता है, तो कभी राजनीति के अपराधीकरण के लिये भी इसे दोषी माना जाता है। लिहाज़ा, चुनावी चंदा देने के तरीकों में हमेशा ही तब्दीलियाँ होती रही हैं।

- ध्यातव्य है कि **जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 की धारा 29-बी** में चुनावी फंडिंग के तरीकों का जिक्र है। इसमें कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति या गैर-सरकारी कंपनी द्वारा राजनीतिक दलों को चंदा दिया जा सकता है। लेकिन **1968 में कॉर्पोरेट फंडिंग पर प्रतिबंध** लगा दिया गया था।
- 1974 में **कंवर लाल गुप्ता बनाम अमर नाथ चावला** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि एक उम्मीदवार के चुनावी खर्च को पार्टी के चुनावी

खर्च में शामिल किया जाना चाहिये। लेकिन इसके अगले ही साल संसद ने कोर्ट के आदेश के खिलाफ कानून बना दिया। बाद में **1985 में कंपनी अधिनियम में संशोधन ने कॉर्पोरेट फंडिंग** को बहाल किया। इसके मुताबिक कंपनियाँ पिछले तीन सालों में अपने औसत शुद्ध लाभ का पाँच फीसद तक दान कर सकती हैं।

- चुनावी फंडिंग में और अधिक बदलाव तब आए, जब **दिनेश गोस्वामी समिति की रिपोर्ट, 1990 और इंद्रजीत गुप्ता समिति की रिपोर्ट, 1998** ने चुनावों में आंशिक राज्य वित्तपोषण की सिफारिश की।
- 2003 में सरकार ने व्यक्तिगत और कॉर्पोरेट फंडिंग को पूरी तरह से कर-मुक्त बना दिया। हालाँकि इसकी सीमा ज़रूर तय कर दी गई कि कंपनियाँ कितना राजनीतिक चंदा दे सकती हैं।
- अब तक यह प्रावधान था कि 20 हज़ार रुपए से कम की राशि कैश के ज़रिये चंदे के तौर पर दी जा सकती है और उसमें दाता की पहचान बताने की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन चुनावी फंडिंग के कई संदेहास्पद मामलों के बाद 2017 में केंद्र सरकार ने चुनाव आयोग की उस सिफारिश को मान लिया जिसमें 20 हज़ार रुपए की सीमा को घटाकर 2 हज़ार रुपए करने की बात कही गई थी। साथ ही सरकार ने चुनावी फंडिंग को और पारदर्शी बनाने के लिये चुनावी बॉण्ड की संकल्पना पर विचार किया जिसे अब अमल में लाया जा रहा है।

पारदर्शिता के तमाम दावों के बावजूद चुनावी बॉण्ड को लोकतंत्र के लिये खतरनाक क्यों माना जा रहा है?

भारत की चुनाव व्यवस्था आज़ादी के बाद से ही पारदर्शिता और निष्पक्षता की लड़ाई लड़ रही है। लेकिन विडंबना है कि आज़ादी के 70 साल बाद जिस चुनावी बॉण्ड की व्यवस्था की गई उसमें भी पारदर्शिता अपने वजूद की तलाश कर रही है। दरअसल, कई दशकों से सियासी दल चंदा देने वालों के नाम को छुपाने का जो खेल, खेल रहे थे, उसका खात्मा इस चुनावी बॉण्ड के चलते भी नहीं हो सका है। ऐसे में पारदर्शिता के सभी सरकारी दावे महज़ दावे ही मालूम पड़ते हैं।

- यह विडंबना नहीं तो और क्या है कि हर बार पारदर्शिता को सुनिश्चित करने के लिये चंदा देने वालों के नाम उजागर करने की मांग की जाती है लेकिन सियासी दल हर कानून में अपना रास्ता खोज निकालते हैं। **20 हज़ार रुपए से कम चंदा देने वालों के नाम और चुनावी बॉण्ड में दान दाताओं की पहचान गोपनीय रखने की व्यवस्था** इसी का एक पहलू है।
- ऐसा माना जाता है कि राजनीतिक दलों को कॉर्पोरेट फंडिंग किसी खास फायदे के मकसद से की जाती है। जब कोई कंपनी किसी दल को चंदे के तौर पर धन मुहैया कराती है, तो इसके पीछे चुनाव बाद राजनीतिक और आर्थिक फायदा हासिल करने की नीयत होती है। लेकिन गौर करें कि जब चुनावी बॉण्ड के ज़रिये चंदा देने वालों का नाम किसी दल को पता नहीं चलेगा, तो यह कैसे मुमकिन है कि किसी व्यक्ति या कंपनी को सत्ताधारी दल कोई फायदा पहुँचा सकेगा? जबकि इसके उलट कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं।
- हाल ही में, चुनावी बॉण्ड के ज़रिये राजनीतिक दलों को 1045 करोड़ रुपए का जो चंदा दिया गया, उसमें से लगभग 95 फीसद चंदा एक विशेष राजनीतिक दल के खाते में आया। लिहाज़ा, इस बात की आशंका जताई जा रही है कि भले ही जनता इस बात से अंजान हो कि किस कंपनी ने किस दल को चंदा दिया है। लेकिन राजनीतिक दल अंदरूनी तौर पर इनके नामों से वाकिफ होते हैं।
- जहाँ तक चुनावी बॉण्ड का सवाल है, तो इस काल्पनिक लेन-देन में जहाँ बैंक दाता की पहचान कर सकता है वहीं चंदा प्राप्त करने वाले की पहचान नहीं कर सकता है। लेकिन दोनों ही RBI को रिपोर्ट करते हैं जो कि किसी-न-किसी रूप में केंद्र सरकार के अधीन है। इसलिये आशंका इस बात की है कि कम-से-कम सत्तारूढ़ पार्टी यह पता लगा सकती है कि किन कंपनियों ने विपक्षी दलों को दान दिया और किन कंपनियों ने उसे दान दिया है। जाहिर है विपक्षी दलों को दान देने वाली कंपनियाँ बदले की भावना का शिकार हो सकती हैं। इसका दूसरा मतलब यह भी समझ सकते हैं कि चुनावी बॉण्ड की योजना के बाद विपक्षी दलों को पर्याप्त धन जुटाने के लिये खासी मशक्कत करनी पड़ सकती है। लिहाज़ा चुनावी बॉण्ड के ज़रिये सत्ताधारी दल लोकतांत्रिक व्यवस्था के फायदों को अवैध रूप से अपने पक्ष में कर सकते हैं।
- चुनावी बॉण्ड शुरू करने के पीछे सरकार का तर्क यह था कि वे दानदाताओं की पहचान गोपनीय रखकर उन्हें उत्पीड़न से बचाएंगे। लेकिन सरकार का यह तर्क गलत मालूम पड़ता है क्योंकि केवल सरकार ही वह संस्था है जो चाहे तो दानदाताओं को परेशान कर सकती है और चाहे तो गैर-सरकारी उत्पीड़कों से दानदाताओं को बचा भी सकती है। दूसरी तरफ, सरकार का दावा है कि चूँकि ये बॉण्ड बैंकिंग चैनलों के ज़रिये खरीदे जाते हैं, लिहाज़ा यह योजना चुनावी फंडिंग के ज़रिये कालेधन के प्रवेश पर रोक लगाएगी।
- लेकिन न केवल सरकार का यह तर्क अस्पष्ट मालूम पड़ता है बल्कि चुनावी फंडिंग में भ्रष्टाचार के बढ़ने की भी आशंका जताई जा रही है। मसलन, इस तथ्य पर विचार करें कि चुनावी बॉण्ड में दाता की सौ फीसदी गोपनीयता की बात कही जा रही है। इसमें न तो बॉण्ड के खरीदार और न ही दान प्राप्त करने वाले राजनीतिक दल को दाता की पहचान का खुलासा करना ज़रूरी है। इसलिये न केवल एक कंपनी के शेयरधारक कंपनी के दान से अनजान होंगे बल्कि मतदाताओं को भी पता नहीं होगा कि कैसे और किसके ज़रिये एक राजनीतिक पार्टी को वित्तपोषित किया गया है।

आगे की राह

दरअसल, भारतीय लोकतंत्र में चुनाव को साफ-सुथरा और पारदर्शी बनाना हमेशा ही चुनौती रही है। यही कारण है कि चुनाव आयोग के साथ-साथ विधि आयोग भी समय-समय पर जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 में संशोधन की सिफारिश करता रहा है। लेकिन चिंता का विषय यह है कि पारदर्शिता के नाम पर सरकार की हर कवायद अधूरी ही साबित हुई है। चुनावी बॉण्ड के माध्यम से चंदा हासिल करने के लिये दलों के लिये योग्यता निर्धारित करने से लेकर खातों के ज़रिये बॉण्ड खरीदने के प्रावधान सराहनीय हैं। लेकिन दानदाताओं के नाम को गोपनीय रखने की सरकार की मंशा ने चुनावी बॉण्ड के मकसद को अधूरा कर दिया है। पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त **टी.एस. कृष्णमूर्ति और वाई.एस. कुरैशी** के अलावा हाल ही में रिटायर हुए मुख्य चुनाव आयुक्त **ओ.पी. रावत** ने भी चुनावी बॉण्ड को लोकतंत्र के लिये हितकारी नहीं माना है।

- इसके अलावा चुनावी सुधारों पर विधि आयोग की 255वीं रिपोर्ट में कहा गया है कि चुनावी फंडिंग में अपारदर्शिता बड़े दानदाताओं द्वारा सरकार को 'कैप्चर' करने जैसा है।
- राजनीतिक फंडिंग में पारदर्शिता जितनी कम होगी, कॉर्पोरेट घरानों के लिये उतना ही आसान होगा कि वे जो बात चाहें सरकार से मनवा सकें।
- गैर-सरकारी संगठन '**एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स**' के अनुसार, राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदे का 69 फीसद हिस्सा अज्ञात स्रोतों से प्राप्त होता है। जाहिर है यह आँकड़ा विधि आयोग की फिक्र को और बढ़ाने जैसा है।
- लिहाज़ा, पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस.वाई. कुरैशी के एक सुझाव पर अमल किया जा सकता है। उनके मुताबिक, एक राष्ट्रीय चुनावी कोष बनाया जाए जिसमें सभी दानदाता योगदान दे सकते हैं। कोष में जमा राशि को मिलने वाले वोटों के अनुपात में राजनीतिक दलों के बीच आवंटित किया जाए। इससे न

केवल दानदाताओं की पहचान सुरक्षित होगी बल्कि राजनीतिक चंदे से काला धन भी खत्म होगा।

- बहरहाल, सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि आधी-अधूरी पारदर्शिता के बजाय पूर्ण पारदर्शिता वाली किसी प्रक्रिया पर विचार किया जाए ताकि चुनावी चंदे को भ्रष्टाचार और कालाधन से मुक्त किया जा सके।

[ऑडियो आर्टिकिल के लिए क्लिक करे.]

प्रश्न : चुनावी बॉण्ड क्या है और इसकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं? क्या दानदाताओं की पहचान गुप्त रखने से चुनावी फंडिंग में पारदर्शिता के उद्देश्य की प्राप्ति हो सकेगी? परीक्षण कीजिये।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/politics-of-electoral-bond